

वेदान्त - दर्शन (परम पूज्य स्वामी शंकरानन्द)

वेदों के उत्तरार्ध भाग उपनिषद् हैं। वे वेदान्त कहलाते हैं। उपनिषद् अनेक हैं जैसे ईश, कठ, केन आदि। विभिन्न ऋषियों ने इनमें परमतत्त्व का प्रतिपादन किया है। ऊपरी दृष्टि से इनमें मतभेद दिखाई देता है। उसमें संगति बैठालने के लिए बादरायण ने ब्रह्मसूत्र की रचना की। श्रीमद्भगवद्गीता भी वेदान्त का ग्रन्थ माना जाता है। इस प्रकार उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता को वेदान्त का प्रस्थानत्रय कहते हैं। इन ग्रन्थों पर शंकराचार्य आदि ने भाष्य लिखे हैं। बाद में इन भाष्यों पर वार्तिक, टीकायें आदि लिखी गईं। अनेक आचार्यों ने वेदान्त के स्वतंत्र ग्रन्थ भी लिखे हैं। इस प्रकार वेदान्त दर्शन पर आज विपुल साहित्य उपलब्ध है।

भाष्यकारों ने वेदान्त का प्रतिपादन अपनी अपनी दृष्टि से किया है। इनमें प्रमुख भाष्यकार शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य हैं। जीव और ब्रह्म के सम्बंध में उनके दृष्टिकोणों में अन्तर होने के कारण उनके सम्प्रदाय चल पड़े। शंकराचार्य के मतानुसार जीव और ब्रह्म दो नहीं हैं। अतः उनका मत अद्वैतवाद कहलाता है। रामानुजाचार्य ब्रह्म में स्वगत भेद स्वीकार ईश्वर, जीव और जगत को उसी का रूप मानते हैं। वे विशिष्टाद्वैतवादी हैं। निम्बकाचार्य जीव और ब्रह्म को एक दृष्टि से अभिन्न और एक दृष्टि से भिन्न मानकर अपने मत को द्वैताद्वैत कहते हैं। मध्वाचार्य इन दोनों की दो स्वतंत्र सत्तायें मानकर द्वैतवाद का प्रतिपादन करते हैं। वे इसके समर्थन में उपनिषदों से उदाहरण देकर प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इन आचार्यों में सबसे प्रसिद्ध शंकराचार्य और रामानुजाचार्य हैं।

शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त

शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म ही एक अद्वितीय सत्ता है। उसमें सजातीय, विजातीय या स्वांगत कोई भेद नहीं है। जीव अपने वास्तविक रूप में ब्रह्म ही है। जगत् मायामय आभास मात्र है अतः ब्रह्म के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है। इस सिद्धान्त में परमतत्त्व को ब्रह्म कहते हैं। वह सत्, चित् और आनन्द स्वरूप है। ये उसके स्वरूप लक्षण हैं। शुद्ध चेतना ही ब्रह्म है। वह अनादि, अनन्त और नित्य होने के कारण सत् है। वह पूर्ण होने के कारण आनन्दस्वरूप है। सत् और चित् दोनों आनन्द के अंतर्गत आ जाते हैं। ये तीन नहीं एक हैं। सत्, चित् और आनन्द किसी पदार्थ के धर्म या गुण नहीं हैं। ब्रह्म जगत का कारण भी है। यह उसका तटस्थ लक्षण है। तटस्थ लक्षण वस्तु के आगन्तुक और परिणामी धर्मों का वर्णन करता है। ब्रह्म से ही जगत की उत्पत्ति होती है, उसी में स्थित रहता है और उसी में

विलीन हो जाता है। ब्रह्म इस जगत् का उपादान और निमित्त दोनों कारण है।

कार्य - कारण नियम में शंकराचार्य का मत विवर्तवाद कहलाता है। जब किसी द्रव में वास्तविक विकार उत्पन्न होने से किसी कार्य की उत्पत्ति होती है तो उसे परिणामवाद कहते हैं। यह सांख्य मत है। जब किसी द्रव में विकार का आभास हो किन्तु वस्तुतः न हो तो उससे उत्पन्न कार्य का नियम विवर्तवाद कहलाता है। शंकराचार्य इसी सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। इसके अनुसार आदि कारण ब्रह्म में विकार उत्पन्न हुए बिना ही जगत् की रचना होती है, जैसे रस्सी से सर्प उत्पन्न हो। इस प्रकार की रचना भ्रान्ति ही कही जा सकती है। इस भ्रान्ति को शंकराचार्य माया कहते हैं।

माया ईश्वर की शक्ति है। इस माया की उपाधि के कारण ब्रह्म ही ईश्वर कहलाता है। ईश्वर अपनी अनिवर्चनीय माया से जड़ - चेतन जगत् की रचना करता है। जीव इस जगत् को सत्य समझकर माया से मोहित होते हैं और भ्रम में पड़ते हैं। जीवों का भ्रम ही अविद्या कहलाता है। अविद्या के कारण सत्यस्वरूप ब्रह्म तो अनुभव में नहीं आता, वरन् उसके स्थान पर मिथ्या जगत् ही सत्य प्रतीत होता है। जीव की यह अविद्या दूर हो सकती है। श्रुति प्रमाण प्राप्त होने पर और उस पर भली भाँति विचार करने से अविद्या नष्ट हो जाती है। अविद्या से मुक्त जीव अपने आपको ब्रह्म ही पाता है। माया की उपाधि से रहित ईश्वर और अविद्या की उपाधि से रहित जीव अपने मूल में ब्रह्म ही हैं। यही अद्वैतवाद का प्रतिपाद्य विषय है।

माया को प्रकृति भी कहते हैं। यह त्रिगुणात्मक है। सत्व, रज और तम ये तीनों इसके गुण हैं। सत्व गुण सौम्य है। उसमें शान्ति प्रसन्नता, ज्ञान और वैराग्य है। रजोगुण घोर है। उसमें तृष्णा, कर्मभोग और दुःख है। तमोगुण में जड़ता और मूढ़ता है। इन तीनों गुणों के मिश्रण से सूक्ष्म-पंचमहाभूत उत्पन्न होते हैं। उसके नाम आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी हैं। इन सबमें तीनों गुण होना स्वाभाविक है। सूक्ष्म पंचभूतों के सत्वांश से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और अन्तःकरण उत्पन्न होते हैं और उनके रजसांश से पाँच कर्मेन्द्रियाँ और प्राण उत्पन्न होते हैं। उनके तमसांश का पंचीकरण होता है और स्थूल पंचमहाभूत बनते हैं। इनसे जगत् की रचना होती है और चराचर प्राणियों के शरीर निर्मित होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् मायाकृत है।

ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान है। वह जड़ जगत् का अधिष्ठान होकर उसे सत्यता प्रदान कर रहा है। प्राणियों में व्याप्त होने से उसकी चेतना सबको जीवन दे रही है। जब कभी प्राणियों को प्रसन्नता प्राप्त होती है तो वह ब्रह्म की ही प्रतिछाया है। जगत् में कहीं सुख नहीं है।

प्राणियों को तीन शरीर प्राप्त हैं - स्थूल, सूक्ष्म और कारण। स्थूल शरीर स्थूल पंचभूतों से,

सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म पंचभूतों से और कारण शरीर तीन गुणों से बना है। कारण और सूक्ष्म शरीर में तादात्म्य रखने वाली आत्मचेतना जीव भाव को प्राप्त होती है। वह जीव जब तक स्थूल शरीर में रहता है, उसमें जीव का जीवन भासित होता है। उस शरीर को छोड़कर जब जीव चला जाता है तो शरीर मृत हो जाता है और पंचभूतों में मिल जाता है। जीव अपने कर्मानुसार एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में चला जाता है। अशुभ कर्मों से दुःख और शुभ कर्मों से सुख प्राप्त होता है। दुःखमय जीवन नरक और सुख की अधिकता ही स्वर्ग है। अहंता ममता, राग द्वेष, ज्ञान अज्ञान, हर्ष विषाद, आदि द्वन्द्वों में पड़ा जीव जनम मरण का कष्ट पाता रहता है। उससे छूटने का उपाय आत्मज्ञान है।

विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुता दृढ़ होने पर शास्त्र और गुरु कृपा से जीव को आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है। ज्ञानी जीव कर्मबंधन से छूटकर शुद्ध चेतन स्वरूप हो जाता है और वह ब्रह्म के साथ एकत्व प्राप्त कर लेता है। यही मुक्ति या ब्रह्मनिर्वाण है। उपनिषदों के "तत्त्वमसि" आदि महावाक्य इसी अवस्था का वर्णन करते हैं।

शंकराचार्य जीवन की तीन दृष्टियों का उल्लेख करते हैं - प्रातिभासिक, व्यावहारिक और पारमार्थिक। आकाश की तल - मलिनता मरुस्थल का जल आदि मिथ्या होने पर भी अज्ञान के कारण सत्य भासित होते हैं। इसे प्रातिभासिक सत्य कहते हैं। जीव को अज्ञान की अवस्था में जगत् सत्य भासित होता है और उसे परमात्मा का अनुभव नहीं होता। यह व्यावहारिक सत्य है। ज्ञान उदय होने पर जगत् मिथ्या और ब्रह्म सत्य अनुभव में आ जाता है। यह पारमार्थिक सत्य है। इस दृष्टि से सर्वत्र एक ब्रह्म ही है। उसके अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है। व्यावहारिक दृष्टि में ईश्वर, जीव और जगत् तीनों हैं। ईश्वर जगत् की रचना करता है और जीव के शुभाशुभ कर्मों का फल देता है। जीव ईश्वर के अधीन रहकर शुभाशुभ कर्मों का फल भोगता है और पुनर्जन्म के चक्र में पड़ता है।